गिरता स्तर

अंग्रेजी अखबार को पढ़ने वाले अक्सर ही जब हिन्दी के अखबारों को पढ़ते हैं तो छूटते ही कहते हैं कि हिन्दी के अखबारों में तो कुछ छपता ही नहीं है। कुछ भी ऐसा नहीं होता है जो पठनीय हो। क्या इसमें कुछ सच्चाई है।

इस बात से शायद ही कोई जागरूक पाठक इन्कार करेगा कि हिन्दी अखबारों का स्तर दिनों दिन गिरता जा रहा है। और यदि कोई अपने आपको हिन्दी अखबारों व पत्रिकाओं तक सीमित कर ले तो शायद उसे यह पता ही नहीं लगे कि दुनिया में क्या हो रहा है। कदाचित यही बात हिन्दी समाचार चैनलों पर भी लागू हो जाती है। हिन्दी के समाचार चैनल तो सनसनी का व्यापार करते हैं। सनसनी से विज्ञापनों की बौछार होती है। कूपमंडूकता से इसे व्यापक आधार प्रदान होता है।

हिन्दी अखबारों में भी समाचार को विज्ञापन नामक राक्षस ने निगलना ज़ारी रखा है। पृष्ठ के पृष्ठ विज्ञापनों से भरे होते हैं। समाचार बेचारा कहीं दुबका पड़ा होता है। और जो समाचार होता भी है वह इतना गया-गुजरा होता है कि आपको उसकी सूचना अथवा ज्ञान न भी हो तो कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा।

किसी अखबार का स्तर क्या है। इसका एक प्रभाव मापदण्ड उसकी सम्पादकीय को लिया जा सकता है। सम्पादकीय का स्तर हिन्दी अखबारों में गिरता ही गया। अक्सर ही सम्पादकीय में जो विचार पेश किये जाते हैं वे अंग्रेजी अखबार व पत्रिकाओं की जूठन लगते हैं। मौलिकता का उनमें नितांत अभाव होता है। और कई दफ़ा तो तथ्यों के मामले में ऐसी भूलें की जाती हैं कि आप हैरान हो सकते हैं। हाल में एक अखबार जिसके आठ राज्यों में दर्जनों संस्करण निकलते हैं, में सम्पादकीय पृष्ठ के एक लेख में उत्तरी कोरिया के वर्तमान शासक किम जोंग उनके पिता किम जोंग इल का नाम किम जोग द्वितीय लिखा हुआ था। यह गलती क्यों हुई क्योंकि लेखक/सम्पादक ने ईल को द्वितीय समझ लिया।

एक बहुत बड़े अखबार समूह के उत्तर भारत में तेज़ी से बढ़ते हिन्दी अखबार ने तो अपना सम्पादकीय में देश-दुनिया में घटने वाली राजनैतिक घटनाओं पर अपनी राय देने से ही किनाराकशी कर ली है। उसके सम्पादकीय में ऐसे विषयों का चयन किया जाता है जिसमें धर्म, विज्ञान के साथ गप्प मारने का पूरा मौका हो। जब किसी अखबार का सम्पादक ही गप्प मारने लगे तो उस अखबार के स्तर के बारे में आपकी राय भला क्या बनेगी?

ऐसे ही हिन्दी का एक अखबार अपने बारे में दावा करता है कि वह हिन्दी का सबसे बड़ा अखबार है और उसकी वितरण संख्या काफ़ी पहले एक करोड़ को पार कर चुकी है। इस अखबार के सम्पादकीय पृष्ठ में रोज़ ऐसे लेख छपते हैं जो सत्तारूढ़ पार्टी की अवस्थितियों की व्याख्या कर रहे होते हैं या फ़िर स्पष्टीकरण दे रहे होते हैं। संघ और भाजपा के महिमामंडन में सम्पादक अक्सर ही या कह सकते हैं रोज़ ही कमर कसकर खड़े हो जाते हैं। विपक्षी पार्टियों, संघ-भाजपा के आलोचकों की कसकर खबर ली जाती है और जब ऐसा किया जाता है तो सच्चाई, निष्पक्षता, पेशेवराना रुख जैसी चीजें ऐसी लगती हैं मानो राह में पड़ा गोबर हों।

अक्सर ही हिन्दी के अखबारों में दुनिया के बारे में खबरें न्यून या शून्य होती हैं। भारत के बाहर अन्य देशों में क्या हो रहा है इसके बारे में आप कुछ नहीं जान सकते। महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय खबरें सिरे से गायब होती हैं। अखबारों में दुनिया के नाम पर जो छपता है वह हालीवुड की मसालेदार खबरें या फ़िर सेक्स से जुड़ी अजीबों गरीब बातें। कई बातें तो सीधे ब्रिटिश अखबार डेली मेल से उठाली जाती हैं और इस अखबार की कोई गंभीर छवि न तो ब्रिटेन में और न ही दुनिया में है। मगर हमारे हिन्दी अखबार इस अंग्रेजी अखबार की वाहियात बातों को पूरे भक्तिभाव से प्रसारित करते हैं। यह मर्ज इस कदर बढ गया है कि हिन्दी जगत में सबसे गंभीर व अच्छे अखबार जिसका प्रचार बेहद सीमित है, में भी ऐसी खबरें पढ़ी जा सकती हैं।

भारत के सबसे बड़े अखबार समूह के मालिक ने एक बार कहा था कि हमारा धंधा समाचार का नहीं विज्ञापन का है। यह बात आज सभी अखबारों पर कमोवेश लागू होती है। पत्रकारिता किसी के लिये भी मिशन नहीं हैं और हकीकत यह है कि जो इसे मिशन के रूप में लेता है वह या तो भूखों मरता है या फ़िर गोलियों से मारा जाता है। अखबारों के दफ़्तर बौद्धिक केन्द्र के स्थान पर विज्ञापन के धंधे का केन्द्र बन गये हैं। सफल सम्पादक, पत्रकार का अर्थ अच्छे धंधेबाज से है। और यह धंधा चुनावों के समय कितना विकराल हो जाता है इसका अन्दाज़ा हाल में सम्पन आम चुनाव से लगाया जा सकता है।

हिन्दी अखबारों के गिरते स्तर के लिये इस तरह से देखा जाये तो सबसे अधिक जिम्मेदार इसके मालिक हैं। यह बात अंग्रेजी अथवा अन्य भाषा के अखबारों के लिये भी सत्य है। एक तरह से कह सकते हैं कि इसकी शुरूआत एकाधिकारी घरानों की तरह चलने वाले अंग्रेजी अखबारों से ही हुई। किसी भी पूंजीपति की तरह अखबार के मालिकों के लिये भी सबसे महत्वपूर्ण चीज़ मुनाफ़ा है। दौलत कमाने के लिये अखबार एक माध्यम भर है। जैसा कि इतिहास हमें बतलाता है कि वही दौलतमंद हो सकता है जो या तो दूसरों का शोषण करता है या फ़िर लूट-भ्रष्टाचार। और किसी भी अखबार का मालिक अपनी दौलत को बढ़ाने के लिये इन दोनों ही तरीकों का प्रयोग करता है। जैसे-जैसे भारत की अर्थ व्यवस्था सड़-गल रही है उसमें इस सबको नैतिक, कानूनी या अन्य तरीकों से जायज ठहराया जाता है। 'पेड न्यूज' का धंधा सबको पता है परन्तु इस पर कौन बोले। संसद, सरकार, राजनैतिक पार्टियों सभी का व्यवहार महात्मा गांधी के मशहूर तीन बंदरों की तरह है। फ़िर जो काम अखबार का मालिक अपने धंधे में करता है वही काम ये अपने धंधे में करते हैं। फ़िर कोई बोले तो क्या बोले।

राष्ट्रीय आजादी के दिनों में अखबारों में एक गुणवत्ता थी। ऐसे सम्पादक, पत्रकार, लेखक थे जिनके लिए सामाजिक आदर्श मायने रखते थे। कई थे जो अपने पेशेवराना अंदाज़ा के लिये मशहूर थे। अपने ही ''अन्नदाता'' के खिलाफ़ खड़े होने वाले भले ही दर-दर ठोकरे खाते हों परन्तु उनकी इज्जत समाज में बहुत ज़्यादा थी। पत्रकारिता के पेशे में ऐसे किस्से पौराणिक कथाओं के सदृश हो गये हैं।

आज़ादी के हर वर्ष बितने के बाद राष्ट्रीय आज़ादी के सपनों, आदर्शों की जिस तरह से कब्र भारत के नये शासक पूंजीपति वर्ग ने खोदी वही अखबार-मीडिया के मामलों में भी हुआ। आज स्थिति विद्रूपता या जुगुप्सा के स्तर पर जा पहुंची है। ऐसे में इन अखबारों के मालिकों या इनके टुकड़ों पर पलने वाले सम्पादक या पत्रकारों से क्या उम्मीद की जा सकती है? कोई कह सकता है कुछ भी नहीं। और कोई कह सकता है कि मालिकों से क्या उम्मीद पालनी वे तो एक ऐसे वर्ग के सदस्य हैं जिसका आम जनता, मज़दूरों-किसानों से कोई लेना-देना नहीं है। सम्पादक, पत्रकार, संवाददाता, लेखक जरूर ऐसे आन्दोलन के हिस्से बन सकते हैं जिसका मकसद पूंजीवाद का खात्मार और समाजाद का निर्माण हो।

-नागरिक

धर्मनिरपेक्षता का मखौल बनाम वास्तविक धर्मनिरपेक्षता

कहा जाता है कि किसी सच को झूठ से ढंकना हो तो उस झूठ को 100 बार दोहराया जाना चाहिये। भारत की संघ-भाजपा मंडली इस काम में सिद्धहस्त है और सबसे ज़्यादा सिद्धहस्त हैं इसके प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी। पिछले लोकसभा चुनावों में इनके बारम्बार झूठ से गुजरात के विकास मॉडल को स्थापित किया गया और गुजरात हर किसी को विकसित नज़र आने लगा। लोकसभा चुनावों के एक वर्ष बाद भी प्रधानमंत्री अपनी वाक् कला से यह झूठ फ़ैलाने का प्रयास कर रहे हैं कि देश गत एक वर्ष में अभूतपूर्व ढंग से विकास की राह पर बढ चला है और पूंजीवादी मीडिया की मेहरबानी से वे इस काम में भी कुछ हद तक सफ़ल रहे हैं। हालांकि एक बड़ी आबादी का विकास की लफ़्फ़ाजी से मोहभंग भी हो चुका है और ऐसे लोग़ों में कई पूंजीपति भी हैं।

संघ मंडली और उसके प्रधनमंत्री अब इसी तरह का एक नया प्रयोग अंजाम दे रहे हैं। यह प्रयोग है किसी शब्द का इतना मखौल उड़ाया जाय कि वह अपना अर्थ खो दे। संघ व उसके चहेते मोदी दोनों को भारतीय संविधान में भारत को धर्मनिरपेक्ष (सेक्युलर) घोषित किये जाने पर आपत्ति है। संघ तो देश को खुलेआम हिंदू राष्ट्र बनाना ही चाहता है। ऐसे में इन शख्सियतों की इतनी हिम्मत तो है नहीं कि ये संविधान बदल दें इसलिये वे चोर दरवाजे से दूसरी रणनीति को अंजाम दे रहे हैं।

यह रणनीति है कि सेक्युलरिज़्म का इतना मखौल उड़ाया जाय कि लोग धीरे-धीरे मान लें कि धर्म निरपेक्ष कहलाना एक मज़ाक बन जाये। इसमें कोई भूल कर भी यह सवाल न उठा पाये कि देश के प्रधानमंत्री जब धर्मनिरपेक्षता का मज़ाक उड़ाते हैं तो वे खुलेआम भारतीय संविधान का भी मखौल बनाते हुए एक अपराधिक कृत्य करते हैं। इसीलिए जब मोहन भागवत देश को हिंदू राष्ट्र करार देते हैं तो कोई भी आवाज़ इसे एक अपराधिक वक्तव्य ठहराने की नहीं उठती।

संघ मंडली ने सेक्युलरिज़्म का मखौल उड़ाने का मुख्य जिम्मा प्रधानमंत्री मोदी को ही दे रखा है। अभी मोदी को देश के भीतर तो यदा कदा ही सेक्युलरिज़्म का मज़ाक बनाने का मौका मिला पर जब भी उन्होंने विदेशों में अनिवासी भारतीयों को सम्बोधित किया तो इसका मज़ाक बनाने का कोई मौका नहीं छोड़ा।

पिछले वर्ष टोकियों में मोदी ने जब जापानी राजा को गीता भेंट की तो साथ ही यह भी कह डाला कि हमारे सेक्युलर मित्र इस पर तूफ़ान खड़ा कर देंगे कि मोदी खुद को क्या समझता है। वे गीता को अपने साथ लाने पर उन्हें साम्प्रदायिक करार देंगे। इसके बाद बर्लिन में यह कहा कि किसी जमाने में जर्मन रेडियो संस्कृत में एक बुलेटिन प्रसारित करता था पर भारत में इस पर सेक्युलरिज़्म के ऊपर इतना तूफ़ान मच जाता है कि संस्कृत भी विवाद में फंस जाती। और अभी हाल में 23 सितम्बर 2015 को आयरलैण्ड के डबलिन में मोदी का स्वागत संस्कृत के श्लोक व गीत से किये जाने पर उन्होंने टिप्पणी की कि अगर भारत में ऐसा करने का प्रयास किया जाए तो सेक्युलरिज़्म पर सवालिया निशान खड़ा हो जाता है। इन सब वाकयों में मोदी गीता और संस्कृत को कुछ इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि ये हिन्दू धर्म से सम्बन्ध नहीं बल्कि भारतीय पहचान की चीजें हैं। क्या किसी धर्मनिरपेक्ष देश का प्रधान गीता व संस्कृत की वकालत करता नज़र आना चाहिये। इसका जवाब स्पष्टतया यही होगा कि ऐसा होना ही यह दिखलाता है कि धर्मनिरपेक्षता वास्तव में स्थापित ही नहीं है।

आज़ाद भारत में धर्मनिरपेक्षता को कभी वैज्ञानिक अर्थों में परिभाषित ही नहीं किया गया। किसी राज्य के धर्मनिरपेक्ष होने का सीधा अर्थ यह होता है कि राजकीय मसलों-राजनीति-शिक्षा आदि में धर्म का हस्तक्षेप बन्द कर दिया जाये। लोग़ों को व्यक्तिगत तौर पर जिस धर्म को वे चाहे मानने की स्वतंत्रता हो पर राज्य या सार्वजनिक जीवन में धर्म का कोई हस्तक्षेप न हो। राज्य वैज्ञानिक व तार्किक चिंतन को लगातार समाज में, शिक्षा में स्थापित करें। पर भारत में धर्मनिरपेक्षता की उपरोक्त व्याख्या के बजाय सर्वधर्म समभाव के रूप में व्याख्या की गयी यानि राज्य सभी धर्मों के प्रति सम्मान भाव रखे। सब धर्मों के आयोजनों को वह सम्मान रूप से प्रश्रय दे।

आज़ाद भारत में धर्मनिरपेक्षता को कभी वैज्ञानिक अर्थों में परिभाषित ही नहीं किया गया। किसी राज्य के धर्मनिरपेक्ष होने का सीधा अर्थ यह होता है कि राजकीय मसलों-राजनीति-शिक्षा आदि में धर्म का हस्तक्षेप बन्द कर दिया जाये। लोग़ों को व्यक्तिगत तौर पर जिस धर्म को वे चाहे मानने की स्वतंत्रता हो पर राज्य या सार्वजनिक जीवन में धर्म का कोई हस्तक्षेप न हो। राज्य वैज्ञानिक व तार्किक चिंतन को लगातार समाज में, शिक्षा में स्थापित करें। पर भारत में धर्मनिरपेक्षता की उपरोक्त व्याख्या के बजाय सर्वधर्म समभाव के रूप में व्याख्या की गयी यानि राज्य सभी धर्मों के प्रति सम्मान भाव रखे। सब धर्मों के आयोजनों को वह सम्मान रूप से प्रश्रय दे। भारत के स्वाधीनता संघर्ष में कांग्रेस के तिलक-गांधी नुमा नेताओं की पृष्ठभूमि में धर्मनिरपेक्षता के वैज्ञानिक अर्थ ग्रहण करने की संभावना क्षीण ही थी क्योंकि ये नेता अक्सर हिंदू प्रतीकों का इस्तेमाल करते पाये जाते थे।

फ़िर भी आज़ादी के वक्त नेहरू ने धर्मनिरपेक्ष भारत से आज तक लम्बी यात्रा तय की जा चुकी है। नेहरू ने अपने वक्त में देश के राष्ट्रपति को, मंत्रियों को गीता-कुरान दूसरों को भेंट देने से यह कहते हुए रोक दिया था कि धर्म निरपेक्ष देश के राष्ट्रपति, मंत्री को धार्मिक प्रतीक भेंट नहीं करना चाहिये। नेहरू ने राष्ट्रपति को किसी मंदिर के उद्घाटन तक में राष्ट्रपति की हैसियत की बजाय व्यक्तिगत तौर पर शामिल होने की सलाह दी थी।

आज नेहरू सरीखे व्यवहार की उम्मीद भाजपा नेताओं से दूर कांग्रेसी व अन्य दलों के नेताओं से भी किये जाने की उम्मीद बेमानी है। दरअसल वोट बैंक मजबूत करने के लिये अपने को धर्मनिरपेक्ष कहलाने वाली पार्टियां कांग्रेस-जनता दल आदि क्रमश: नरम हिन्दुत्व की ओर झुकती चली गयी हैं। धर्मनिरपेक्ष की सर्वधर्म समभाव की वयाख्या ने इसमें मदद की है। यहां तक कि संशोधनवादी कम्युनिस्ट भी इस दौर में 'नास्तिकता' से डगमगाने लगे हैं। इसीलिए राजीव गांधी राम मंदिर के ताले खुलवाते हैं तो सोनिया बुखारी से वोट मांगने जाती हैं और कांग्रेस सेक्युलर होने का ढोल पीटती रहती है।तथा कथित सेक्युलर पार्टियों के व्यवहार ने भी सेक्युलरिज्म का मखौल बनाने की मोदी की कोशिश में भरपूर मदद की है। ये पार्टियां खुद धर्म के आधार पर वोट जुटाने में तिकड़में करती हैं। हिन्दू वोट बैंक खिसक न जाये इस हेतु संघ के जहरीले वक्तव्यों के विरोध से डरती हैं और खुद को सेक्युलर करार देती हैं। संसदीय वामपंथी भी धर्मनिरपेक्ष ताकतों के तौर पर इनके साथ मोर्चा बना मोदी के धर्मनिरपेक्षता का मखौल बनाने का काम आसान कर देते हैं। प्रधानमंत्री मोदी अभी भले ही विदेशों में सेक्युलरिज़्म का मज़ाक बना रहे हों पर शीघ्र ही वे देश के भीतर भी यह हरकत बारम्बार करेंगे। वे सेक्युलर होने को एक गाली के बतौर स्थापित कर मंच की हिन्दू पहचान को मजबूती से स्थापित करना चाहते हैं। देश का शासक पूंजीपति वर्ग भी मोदी की इस कवायद में उसके साथ इस उम्मीद में खड़े हैं कि मोदी उनकी मुनाफ़े की राह सुगम बनायेंगे। इसीलिये मोदी एक और धर्मनिरपेक्षता का मखौल बनाते हैं तो दूसरी ओर संघी संगठनों के लोग धर्मनिरपेक्ष -तार्किक चिन्तकों की हत्यायें कर रहे होते हैं और शासक पूंजीपति वर्ग मौन धारण कर मोदी प्रशंसा में जुटा रहता है। संघ व एकाधिकारी पूंजी के गठजोड़ के इस चरण में इससे भिन्न व्यवहार की उम्मीद भी नहीं की जा सकती। यह बात ही इस ओर संकेत करती है कि आज पूंजीवादी दायरे में धर्मनिरपेक्षता-तार्किकता को स्थापित करने की हर कवायद निष्फल होनी तय है क्योंकि यह नेहरू का नहीं मोदी का जमाना है। पूंजीपति वर्ग का हाथ अब नेहरू के सिर पर नहीं मोदी के सिर पर है। धर्मनिरपेक्षता को वास्तविक अर्थों (सार्वजनिक जीवन, राजकीय मसलों से अलग धर्म को व्यक्तिगत मसला घोषित कर नास) में स्थापित करने वाले सभी बुद्धिजीवियों-चिन्तकों को इसके लिए पूंजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ खड़ा होना पड़ेगा। मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में चल रहे समाजवाद के लिए संघर्ष का हमराह बनना होगा। समाजवाद में ही धर्मनिरपेक्ष भारत का निर्माण होगा तब तक मोदी के सेक्युलरिज़्म विरोध के साथ अन्य पूंजीवादी दलों के छद्म सेक्युलरिज़्म का पर्दाफ़ाश करना होगा।

- नागरिक